Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 SHISRRJ | Volume 4 | Issue 1 | ISSN : 2581- 6306

संस्कृत नाटकों में प्राकृत भाषा की प्रासंगिकता

वीरेन्द्र सिंह
शोध–छात्र (संस्कृत विभाग)
जीवाजी विश्वविद्यालय,
ग्वालियर (म.प्र.)

शोध निर्देशक
प्रो. (डा.) मनीष खैमरिया
विभागाध्यक्ष संस्कृत
महारानी लक्ष्मीबाई शास. उत्कृष्ट
महाविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.)

Article Info
Volume 4, Issue 1
Page Number : 13-17
Publication Issue :
January-February-2021

Article History
Accepted : 01 Jan 2021
Published : 05 Jan 2021

शोध सार – संस्कृत भाषा को सृजनात्मक रूप देने में शताब्दियाँ गुजर गयीं मानव इतिहास के विकास में मौलिक योगदान रहा है। मानव जाति की प्राचीनतम् पुस्तक ऋषि की ऋचाओं के जन्मदाताओं ने अपने मौलिक विचारों, भावों, कल्पनाओं और धारणाओं को मूर्तरूप देने के लिए उस समय की शैशव कालीन अनधिवसित भाषा को सशक्त बनाने में कितना श्रम किया होगा। प्राकृत और संस्कृत का यह मैत्रीबंधन सृजनात्मक साहित्य में विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। नाटकों में दोनों भाषाओं का योगपद्य और अलंकारशास्त्रों से सैद्धान्तिक उदाहरण के लिए प्राकृत साहित्य का उपयोग निःसंशय सिद्ध करता है कि एक के ज्ञान के बिना दूसरे का ज्ञान अपूर्ण माना जाता रहा। सृजनात्मक साहित्य के अतिरिक्त, जैन धर्म दर्शन के क्षेत्र में प्राकृत का ही साम्राज्य था। अतः दार्शनिक विभिन्न प्रस्थानों के आचार्यों के लिए भी प्राकृत का ज्ञान अपरिहार्य था।

मुख्य बिन्दु – सृजनात्मक, नाटकों में, अलंकार शास्त्रों, प्राकृत साहित्य, सर्जनात्मक, प्रस्थानों के, आचार्यों के, अपरिहार्य।

प्राकृत भाषा का सम्बन्ध प्राचीनकाल से साहित्य की विभिन्न विधाओं से रहा है। जिनकी मुख्य विधाओं में काव्य, नाटक, व्याकरण एवं अलंकार में इस भाषा का महत्व है। (१८वीं शताब्दी तक)

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

संस्कृत महाकाव्यों की शैली पर ही प्रायः प्राकृत भाषा में काव्य–साहित्य की रचना हुई है। इस काव्य–साहित्य के सृजन का प्रारम्भ ईसा की पहली शताब्दी से प्रारम्भ होता है। इस प्रकार का साहित्य धार्मिक उपदेशों एवं धार्मिक चरितों से सम्बद्ध न होकर एक स्वतन्त्र रचना है। सरसता की दृष्टि से प्राकृत–काव्यों का विशेष महत्व है। ''इसमें श्रृंगार रस को विशेष स्थान मिला है। प्रायः इस युग में मुक्तक काव्यों की रचना हुई, जिनका कोई पूर्वापर सम्बन्ध नहीं होता तथा जो एक ही पद्य में पाठक को चमत्कृत कर देने की क्षमता रखते हैं। इन काव्यों में गीतात्मकता का पुट होने से गेय तत्व का भी समावेश है।''[त्र]

संस्कृत नाटकों में प्राकृत भाषा का विशेष महत्व रहा। इसकी शुरूआत अश्वघोष, भास, शुद्रक, कालिदास, श्रीहर्ष, भवभूति, विशाखदत्त, भट्टनारायण, सोमदेव आदि नाटक कार्यों के साहित्य में प्राकृत भाषा पायी जाती है। विशुद्ध प्राकृत भाषा में लिखे कर्पूरमंजरी, विलासवती, चन्द्रलेखा, अनन्त सुन्दरी और सिंगारलञ्जरी, इन पॉच सट्टकों में से विलासवती को छोड़कर अवशिष्ट चार सट्टक उपलब्ध हैं। नाट्यशास्त्र के टीकाकर अभिनवगुप्त ने (ई. की १०वीं शताब्दी) सट्टक को नाटिका के समान बताया है। हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन में कहा है कि सट्टक की रचना एक ही भाषा में होनी चाहिए।

''संस्कृत नाटकों में प्राकृत भाषाओं का प्रथम नाटकीय प्रयोग संस्कृत नाटकों में उपलब्ध होता है। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र (१७.३१.४३) में धीरोदात्त और धीर प्रशान्त नायक, राजपत्नी, गणिका और श्रोत्रिय ब्राह्मण आदि के लिए संस्कृत तथा श्रमण, तपस्वी, भिक्षु, चक्रधर, भागवत, तापस, उन्मत, बाल, नीच, ग्रहों से पीड़ित व्यक्ति, स्त्री, नीज जाति और नपुसंकों के लिए प्राकृत बोलने का निर्देश किया है।''[2]

संस्कृत नाटकों के अध्ययन करने से पता लगता है कि इन नाटकों में उच्च वर्ग के पुरूष, अग्रमहिषियाँ, राजमन्त्रियों की पुत्रियाँ और वेश्याएँ संस्कृत तथा साधारणतया स्त्रियाँ, विदुषक, श्रेष्ठी, नौकर–चाकर आदि निम्न वर्ग के लोग प्राकृत में बातचीत करते हैं। कालिदास द्वारा रचित नाटकों में प्राकृत भाषा सभी अद्यम पात्रों द्वारा बोली जाती है। इन नाटकों में धूर्त, विट, पाखण्डी, चेट, चेटी, विट, नपुंसक, भूत, प्रेत, पिशाच, विदूषक, हीन पुरूष आदि द्वारा कालिदास द्वारा रचित संस्कृत नाटकों में प्राकृत भाषा आदि पात्रों द्वारा बोली जाती है।

कालिदास ने अपने नाटकों में प्राकृत भाषा का प्रयोग किया जिसका सम्बन्ध अद्यम पात्रों से है। उनके सभी नाटकों में गौण पात्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं। जिसके द्वारा विभिन्न विचारों को व्यवहारिकता वार्तालापता एवं रूपयाकता को व्यक्त करते हैं। इनकी रचनाओं में गद्य के लिए प्रायः शौरसेनी

और पद्य के लिए प्रायः महाराष्ट्री का प्रयोग मिलता है। जिसे निम्न श्लोक के माध्यम से व्यक्त किया जा रहा है।

शकुन्तला महाराष्ट्री में गाती है–

"तुज्भ्त ण जाणो हिअअं मम उण कामो दिवापि रतिम्मि।
णिग्धिण तवई बलीअं तुइ वुत्तमणोरहाइ अंगाइं।।"[3]

इसी क्रम में मालविकाग्निमित्रम् और विक्रमोर्वशीयम् नाटकों में अद्यम पात्रों के द्वारा प्राकृत भाषा का प्रयोग किया है। जिसमें परिचारिका, विदूषक, चेटी आदि सभी प्राकृत भाषा बोलती है। विक्रमोर्वशीयम् में रम्भा, मेनका, चित्रलेखा, उर्वशी आदि अप्सरायें राज–महिषी, किराती, तापसी आदि स्त्री पात्र तथा विदूषक प्राकृत भाषा बोलते हैं। अपभ्रंश में कुछ सुन्दर गीत है–

"हउं पइं पुछिछामि व्यावखहि गअवरू
ललिअपहारे णसिअतरुवरु।
दूरविणिज्जि अससहरकन्ती
दिट्ठी पिअ पइं समुहु जन्ती।।"[4]

भास ने भी अपने नाटकों में प्राकृत साहित्य का प्रयोग किया है। जिसमें निःसंदेह रूप से उनके नाटकों में शौरसेनी व्याकरण पायी जाती है। चाँरूदत्त और बसन्त सेन के प्रेम का मार्मिक चित्रण किया है। जिसे निम्न प्रकार से व्यक्त किया गया है–

"चिट्ठ चिट्ठ वशञ्चशेणिए। चिट्ठ
किं याशि धावशि पधावशि पक्खलन्ती
शाहु प्पशीदण मलीअशि चिट्ठ दाव।
कामेण शम्पदि हि जज्झइं मे शलीलं
अंगालमज्भ्तपडिदे विअ चम्मखंडे।।"[5]

प्राकृत साहित्य का इतिहास भास के नाटकों के अतिरिक्त अन्य नाटक कार्यों ने भी उसे प्रयोग किया है। सुद्रक ने मृच्छकठिकम् में प्रयोग किया है। जिसमें विभिद्यता और सापेक्षता है। इसके अलावा ग्रियर्सन ने भी अपने विचारों के द्वारा भारतीय प्राकृत भाषा को अपने नाटकों में वरियता दी है। मृच्छकटिकम् नाटक में राजा का साला शकार मागधी में वसन्त सेना वैश्या का चित्रण किया है जो अद्योलिखित है–

''एशा णाणकमूशि–कामकशिका मच्छाशिका लाशिका।
णिण्णाशा कुलणाशिका अवशिका कामस्स मञ्जूशिका।
एशा वेशवहू शुवेशणिलआ वेशंगणा वेशिआ
एशे शे दश णामके मयि कले अज्जावि मं णेच्छदि।।''[6]

इसी क्रम में भवभूति ने अपने नाटकों में प्राकृत भाषा का प्रयोग उनके नाटकों में मिलता है। भवभूति के नाटक महावीरचरितम्, मालतीमाधवम् और उत्तररामचरितम् नाटकों में संस्कृत भाषा के साथ–साथ प्राकृत भाषा का प्राधान्य पाया जाता है। संस्कृति के आदर्श पर उन्होंने शौर सेनी प्राकृत भाषा का प्रयोग किया है। भरत के नाट्यशास्त्र में शट्टक और नाटिका का उल्लेख नहीं मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि भरत ने इन भाषाओं का उल्लेख नहीं किया है। टीका कार्य अभिनव गुप्ता ने संस्कृत और प्राकृत दोनों ही अपनी भाषा के माध्यम से उन भाषाओं को व्यक्त किया है।

''साहित्य दर्पण (६.२७६–२७७) के अनुसार राट्टक पूर्णतया प्राकृत में ही होता है और अद्भुत रस की इसमें प्रधानता रहती है। कर्पूरमजरीकार (१.६) ने सट्ट को नाटिका के समान बताया है। जिसमें प्रवेश और विष्कभ नहीं होते हैं। सट्टक में अंक को यवनिकांतर कहा जाता है। प्राय किसी नायिका के नाम पर ही सट्टक का नाम रखा जाता है।''[7]

कालिदास के अतिरिक्त भवभूति ने अपने नाटकों में प्राकृत भाषा का प्रयोग किया जिसका सम्बन्ध जीवन के विभिन्न के विभिन्न गुण विषयों में दिखलाई पढ़ता है। प्राकृत की व्याकरण छन्दकोष तथा अलंकारग्रन्थ ६ शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी तक प्राकृत व्याकरण की सहायता से जो सुनिश्चित और सुगठित रूप संस्कृत को मिला, प्राकृत उससे वंचित रह गई। व्याकरणों में वररूचि को प्राकृत व्याकरण सबसे अधिक व्यवस्थित और प्रामाणिक है। लेकिन इसके सूत्रों से अश्वघोष के नाटक खरोष्ट्री लिपि के धम्मपद और अर्धमागधी में लिखे हुए जैन आगमों आदि की भाषाओं पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। अवश्य ही पैशाची भाषा – जिसका कोई भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है – के नियमों का उल्लेख यहाँ मिलता है। इससे प्राकृत व्याकरणों की अपूर्णता का ही घोतन होता है।

मार्कण्डेय, भरत, कोहल, वरूचि, भामा और बसन्त राज ने प्राकृत व्याकरणाचार्य थे जिन्होंने अपनी क्षमता के द्वारा प्राकृत व्याकरण को व्यक्त किया है। प्राकृत व्याकरण अंग्रेजी साहित्य के विभिन्न विद्वानों ने ठवददए भ्ंतकल एवं म्सपवज ने प्राकृत व्याकरण का प्रयोग किया। भाषा के अध्ययन के लिये व्याकरण की भाँति कोश का अध्ययन भी आवश्यक है। वैदिक शब्दावली को समझने के लिये निघण्टुकोश की रचना की गई। जिस पर यास्क ने टीका लिखकर शब्दों को व्युत्पत्तिपूर्वक सिद्ध किया।

संस्कृत और प्राकृत भाषा का आपस में सम्मिश्रण है, अधिकतर नाटककारों ने अपने नाटकों उन्हें दैदीप्यमान करने का प्रयास किया जिसमें प्राचीनता और आधुनिकता का ऐतिहासिक स्वरूप दिखलाई पड़ता है। वर्तमान समय में दोनों भाषाओं की साहित्य के क्षेत्र में पराकाष्ठा है। जो व्याकरण और भाषा की दृष्टि से परिवेस्ठित है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. राम पाण्डेय, राम अवध मिश्र रविनाथ – पालि प्राकृत अपभ्रंश संग्रह – प्रकाशन विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक वाराणसी – संस्करण – २००६ ई. पृ.सं. ४२
2. राम पाण्डेय, राम अवध मिश्र रविनाथ – पालि प्राकृत अपभ्रंश संग्रह – प्रकाशन विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक वाराणसी – संस्करण – २००६ ई. पृ.सं. ४३
3. जैन जगदीश चन्द्र – प्राकृत साहित्य का इतिहास – चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी – संस्करण २०१४ – पृ.सं. ५१४
4. जैन जगदीशचन्द्र – प्राकृत साहित्य का इतिहास – चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी – संस्करण २०१४ – पृ.सं. ५२१–५२२
5. जैन जगदीशचन्द्र – प्राकृत साहित्य का इतिहास – चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी – संस्करण २०१४ – पृ.सं. ५१२
6. जैन जगदीशचन्द्र – प्राकृत साहित्य का इतिहास – चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी – संस्करण २०१४ – पृ.सं. ५२०
7. जैन जगदीशचन्द्र – प्राकृत साहित्य का इतिहास – चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी – संस्करण २०१४ – पृ.सं. ५२१